

श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय ४: वेदव्यास की अन्तर्वेदना

11 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



सरस्वती के पावन तट पर उषाकाल में महर्षि वेदव्यास मौन खिन्नता में बैठे हैं — क्योंकि वेदों का विभाजन और महाभारत की रचना करने पर भी उनका हृदय अभी शान्त नहीं हुआ था।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विजडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण के पावन आख्यानो और उपदेशों की यह एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। प्रथम स्कन्ध के इस चौथे अध्याय में हम सम्पूर्ण शास्त्र के सबसे कोमल और विस्मयकारी प्रसंगों में से एक तक पहुँचते हैं — अपार महिमा वाले महर्षि, स्वयं वेदों के संकलनकर्ता, यह अनुभव करते हैं कि उनका हृदय अब भी अतृप्त है। यहाँ भागवत मौन भाव से अपनी ही उत्पत्ति का रहस्य

खोलता है — कैसे वेदव्यास द्वारा अनुभव की गई वह अपूर्णता, और एक दिव्य हितैषी का परामर्श, उस भक्ति-गान को जन्म देगा जिसे हम अभी पढ़ रहे हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: १ (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: ४ (चतुर्थ अध्याय / प्रवचन ४)
- अध्याय शीर्षक: वेदव्यास की अन्तर्वेदना और नारद का आगमन
- मुख्य वक्ता: महर्षि शौनक (पुनः प्रश्न करते हुए) और पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा (उत्तर देते हुए)
- मुख्य श्रोता: सूत जी, और तत्पश्चात् नैमिषारण्य में एकत्र ऋषिगण
- मुख्य स्थल: नैमिषारण्य वन का यज्ञस्थल; और कथा के भीतर, सरस्वती नदी के तट पर वेदव्यास का आश्रम
- केन्द्रीय विषय: वेदव्यास की उत्पत्ति, उनके द्वारा वेदों का विभाजन और महाभारत की रचना, उनकी शेष रह गई अतृप्ति, और दिव्य ऋषि नारद का आगमन
- मुख्य श्लोक-सीमा: प्रथम स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक १-३३
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पूर्व अध्याय का सन्दर्भ

तीसरे अध्याय में पूज्य सूत जी ने भगवान के अनेक अवतारों का वर्णन किया था और बताया था कि इसी कलियुग में वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत का संकलन किया और उसे अपने पुत्र शुकदेव को — जो आत्मज्ञानियों में अग्रगण्य हैं — पढ़ाया। शुकदेव ने आगे उसे राजा परीक्षित को सुनाया, जब वे गंगा-तट पर अनशन-व्रत लेकर बैठे थे। सूत जी, जो स्वयं वहाँ उपस्थित होकर उसे सुन चुके थे, ने वचन दिया कि जैसा उन्होंने सीखा है वैसा ही वे नैमिषारण्य के ऋषियों को सुनाएँगे। ठीक इसी बिन्दु पर, इस ताज़े वचन के साथ, चौथे अध्याय का आरम्भ होता है।

शौनक पुनः प्रश्न करते हैं

जब सूत जी इस प्रकार कह चुके, तब सभा में उपस्थित ऋषियों में सबसे वयोवृद्ध उठ खड़े हुए। ये थे शौनक — ऋग्वेद के आजीवन अध्येता और एक महान गुरुकुल के कुलपति — जो उस दीर्घ यज्ञसत्र के लिए एकत्र सभी ऋषियों में सबसे ज्येष्ठ होने के कारण सबकी ओर से बोले। उन्होंने पहले सूत जी की सादर प्रशंसा की, और फिर उनके समक्ष उत्सुकतापूर्ण प्रश्नों की एक नई शृंखला रखी।



नैमिषारण्य में एकत्र ऋषियों में सबसे वृद्ध शौनक उठकर पूज्य सूत जी का सम्मान करते हैं और पुनः प्रश्न आरम्भ करते हैं (श्लोक १-२)।

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ।

वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

vyāsa uvāca iti bruvāṇaṁ saṁstūya munīnāṁ dīrgha-satriṇām । vṛddhaḥ kula-patiḥ sūtaṁ bahvṛcaḥ śaunako 'bravīt ॥ 1 ॥

अर्थ: जब सूत जी इस प्रकार कह चुके, तब उस दीर्घ यज्ञ में लगे ऋषियों में सबसे ज्येष्ठ, ऋग्वेद के ज्ञाता और सभा के वयोवृद्ध कुलपति शौनक ने उनकी प्रशंसा कर उन्हें सम्बोधित किया। (प्रथम स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक १)

“हे सूत जी, परम भाग्यशाली और वक्ताओं में श्रेष्ठ,” शौनक ने आरम्भ किया, “कृपया हमें भगवान की वही पावन कथा पुनः सुनाइए जो दिव्य ऋषि शुकदेव ने राजा परीक्षित को सुनाई थी।” फिर उन्होंने उस महान प्रवचन के प्रसंग को जानना चाहा: वह किस युग में, किस स्थान पर और किस अवसर पर हुआ था? किसकी प्रेरणा से कृष्णद्वैपायन — वेदव्यास — ने इस संहिता का संकलन किया?

शौनक की जिज्ञासा फिर स्वयं शुकदेव की ओर मुड़ी — वे महान योगी, जो सब प्राणियों को समदृष्टि से देखते थे, जिनका मन पूर्णतः भगवान में स्थित था, और जो पूर्ण विरक्त होकर संसार में अपरिचित घूमते थे — इतने उदासीन कि साधारण लोग उन्हें मूढ़ समझ बैठते थे। ऋषियों ने विचार किया कि हस्तिनापुर के नागरिकों ने ऐसे गूढ़ पुरुष को कैसे पहचाना, जब वे कुरु-जांगल देश से होते हुए पागल, गूँगे और जड़ के समान निकल गए थे? और वह राजर्षि परीक्षित उनके साथ उस वार्तालाप में कैसे बैठे, जिससे यह भागवत प्रकट हुआ? क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि शुकदेव किसी गृहस्थ के द्वार पर केवल उतनी ही देर ठहरते थे जितनी देर में गौ दुही जाती है — बस घर को पवित्र करने भर के लिए।

तब ऋषियों ने स्वयं राजा परीक्षित की कथा सुनने की इच्छा प्रकट की — जो भगवान के अनन्य भक्तों में गिने जाते हैं — उनके अद्भुत जन्म और कर्मों की कथा। वह सम्राट, जिनके शत्रु कभी उनके चरणों में नत होते थे, इतनी अल्प अवस्था में अपने साम्राज्य-वैभव को त्यागकर गंगा-तट पर मृत्युपर्यन्त अनशन का व्रत लेकर क्यों बैठ गए? शौनक ने कहा कि जो पुरुष भगवान के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं वे अपने लिए नहीं,

अपितु संसार के कल्याण के लिए जीते हैं; फिर ऐसे राजा ने अपने शरीर को, जो स्वयं अन्य प्राणियों का आश्रय था, क्यों त्याग दिया? “जो कुछ हमने पूछा है, वह सब हमें बताइए,” उन्होंने कहा, “क्योंकि हम जानते हैं कि केवल वेदों को छोड़कर आपने समस्त शास्त्रों का पारायण किया है।”

वेदव्यास का आविर्भाव

उत्तर में सूत जी ने आरम्भ से — वेदव्यास के जन्म से — कथा प्रारम्भ की। द्वापर युग में, चतुर्युगी के तीसरे परिवर्तन में, महान योगी व्यास स्वयं श्रीहरि के अंश-रूप में, महर्षि पराशर द्वारा सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुए।

सूत उवाच

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ।

जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥

sūta uvāca dvāpare samanuprāpte tṛtīye yuga-paryaye । jātaḥ parāśarād yogī vāsavyām kalayā hareḥ ॥ 14 ॥

अर्थ: जब द्वापर युग आया, युगों के परिवर्तन में तीसरा, तब महान योगी व्यास — श्रीहरि के अंशावतार — पराशर द्वारा सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुए। (प्रथम स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक १४)

एक प्रातःकाल, सरस्वती के पावन जल में स्नान करके व्यास सूर्योदय के समय एक एकान्त स्थान में अकेले बैठ गए। भूत और भविष्य दोनों को देख सकने वाली अमोघ दृष्टि से सम्पन्न उस ऋषि ने देखा कि काल के मौन प्रवाह से युगों के धर्म किस प्रकार शिथिल हो गए हैं। उन्होंने देखा कि पदार्थों की शक्ति क्षीण होती जा रही है, और लोग श्रद्धाहीन, दुर्बल-संकल्प, मन्दबुद्धि और अल्पायु होते जा रहे हैं। इन अभागे जीवों पर करुणा से द्रवित होकर उन्होंने अपनी दिव्य अन्तर्दृष्टि से विचार करना आरम्भ किया कि प्रत्येक वर्ण और आश्रम के जनों का सच्चा हित किसमें है।

एक वेद का विभाजन

यह देखकर कि वैदिक यज्ञ — जो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा — इन चार ऋत्विजों के द्वारा सम्पन्न होता है — मानव-जाति का महान पवित्रकारी है, व्यास ने उसकी परम्परा को चिरस्थायी बनाने का निश्चय किया। इसी हेतु उन्होंने एक ही वेद को चार भागों में विभक्त किया, ताकि वह विशाल पावन शब्दराशि सरलता से सुरक्षित और प्रयुक्त हो सके।



युग की क्षीण होती शक्तियों को देखकर वेदव्यास एक वेद को चार भागों में विभक्त करते हैं और प्रत्येक को एक योग्य शिष्य को सौंपते हैं (श्लोक १९-२४)।

इस प्रकार उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को पृथक् किया; और प्राचीन इतिहासों तथा पुराणों को उन्होंने पंचम वेद माना। प्रत्येक शाखा उन्होंने एक महान शिष्य को सौंपी: पैल को ऋग्वेद मिला, जैमिनि ने सामवेद का गान सीखा, और वैशम्पायन ने यजुर्वेद में प्रवीणता प्राप्त की। दुरुण-पुत्र सुमन्तु ने अथर्ववेद का भार लिया, जबकि स्वयं सूत जी के पिता रोमहर्षण ने इतिहास और पुराणों में महारत पाई। इन आचार्यों ने आगे अपने-अपने अंशों को अनेक शाखाओं में विभक्त किया, और इस प्रकार शिष्यों तथा शिष्यों के शिष्यों के द्वारा चारों वेद अपनी असंख्य शाखाओं में विस्तृत हुए। यह सब करुणामय व्यास ने इसलिए किया कि अल्पबुद्धि जन भी पावन शब्द का कोई अंश ग्रहण और धारण कर सकें।

समस्त जनों के लिए महाभारत

किन्तु व्यास की करुणा और भी आगे पहुँची। उन्होंने देखा कि स्त्रियाँ, श्रमजीवी और वे उच्चवर्ण में जन्मे किन्तु अपने धर्म का पालन न करने वाले जन प्रथा के अनुसार वेदों को सुनने तक से वंचित थे — और इसलिए उन कर्मों से अनजान रह जाते थे जो परम कल्याण की ओर ले जाते हैं। उन्हीं के लिए, विशुद्ध करुणा से, ऋषि ने महान इतिहास-काव्य महाभारत की रचना की, ताकि वे भी कल्याण का मार्ग पा सकें।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।

कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।

इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ २५ ॥

strī-śūdra-dvijabandhūnām trayī na śruti-gocarā । karma-śreyasī mūḍhānām śreya evaṁ bhaved iha । iti bhāratam ākhyānaṁ kṛpayā muninā kṛtam ॥ 25 ॥

अर्थ: चूँकि स्त्रियाँ, श्रमजीवी और द्विजों में जो अयोग्य थे, वे तीनों वेदों को नहीं सुन सकते थे और परम कल्याण का मार्ग नहीं जानते थे, इसलिए ऋषि ने करुणावश महाभारत के इतिहास की रचना की, ताकि वे भी यहाँ कल्याण प्राप्त कर सकें। (प्रथम स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक २५)



वेदों को सुनने से वंचित जनों पर करुणा करके वेदव्यास समस्त जनों के कल्याण हेतु महान महाभारत की रचना करते हैं (श्लोक २५)।

एक अतृप्त हृदय

और यहीं यह अध्याय भीतर की ओर मुड़ता है — अपने सबसे मार्मिक क्षण की ओर। अपने समस्त विराट परिश्रम के बाद भी — वेद का विभाजन, पुराणों का निर्माण, विशाल महाभारत की रचना, यह सब प्रत्येक प्राणी के कल्याण के लिए अथक भाव से किया गया — व्यास का अपना हृदय अब भी सन्तुष्ट नहीं था।

एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ।

सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद् हृदयं ततः ॥ २६ ॥

evam pravṛttasya sadā bhūtānām śreyasi dvijāḥ । sarvātmakenāpi yadā nātuṣyad dhṛdayam tataḥ ॥ 26 ॥

अर्थ: हे ऋषियो! इस प्रकार सब प्राणियों के कल्याण में हृदय से और सब प्रकार से लगे रहने पर भी उनका हृदय सन्तुष्ट न हुआ। (प्रथम स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक २६)

इस बेचैनी का अनुभव करके वह ऋषि — जो धर्म के रहस्य को भली-भाँति जानते थे — सरस्वती के पावन तट पर एक एकान्त स्थान में जाकर अपने भीतर विचार करने बैठ गए। “दृढ़ व्रत के साथ,” उन्होंने मन में कहा, “मैंने वेदों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन किया, गुरुजनों की सेवा की, और यज्ञाग्नियों की निष्ठापूर्वक उपासना की, प्रत्येक विधि का पालन करते हुए। महाभारत के द्वारा मैंने वेदों का तात्पर्य ही खोल दिया, ताकि स्त्रियाँ, श्रमजीवी और अन्य सब भी अपने धर्म को समझ सकें। और यद्यपि मैं शास्त्रज्ञों में अग्रगण्य हूँ, और असाधारण शक्तियों से भी रहित नहीं, फिर भी लगता है मेरी आत्मा ने अपने सच्चे स्वरूप को अब तक नहीं जाना।” कुछ, उन्होंने अनुभव किया, छूट रहा था — कोई अनिवार्य वस्तु जिसे उनकी समस्त महत्ता ने स्पर्श नहीं किया था।

एकमात्र न्यूनता: भाक्ते का माग

तब अपने ही हृदय को टटोलते हुए ऋषि उत्तर के निकट पहुँचे। उन्होंने सोचा, कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्होंने उस एक वस्तु को समुचित स्थान नहीं दिया जो सबसे प्रिय है — भगवान की प्रेममयी सेवा और महिमा-गान?

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।

प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३१ ॥

kiṁ vā bhāgavatā dharmā na prāyeṇa nirūpitāḥ । priyāḥ paramahāṁsānām ta eva hy acyuta-priyāḥ ॥ 31 ॥

अर्थ: “अथवा क्या इसलिए कि मैंने भगवान की प्रेममयी भक्ति के उन मार्गों — भागवत-धर्मों — का पूर्ण वर्णन नहीं किया, जो परमहंस सन्तों को और स्वयं अच्युत भगवान को प्रिय हैं?” (प्रथम स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक ३१)



मौन चिन्तन में वेदव्यास अपने समस्त कार्य में शेष रह गई एकमात्र वस्तु का अनुभव करते हैं — भगवान का साक्षात् महिमा-गान, जो परमहंस सन्तों को प्रिय है (श्लोक ३१)।

इसी एक गहन, खोजी विचार में सम्पूर्ण भागवत का बीज निहित है। व्यास की पूर्व सभी रचनाओं ने धर्म, ज्ञान और सदाचार का उपदेश दिया था; किन्तु भगवान का वह विशुद्ध, निष्काम प्रेम — धर्म का ही हृदय, महान परमहंसों द्वारा संचित और स्वयं भगवान को प्रिय — अब तक अपने केन्द्रीय स्थान पर नहीं आया था। जो रिक्तता उन्होंने अनुभव की वह विद्या का अभाव नहीं, अपितु हृदय की एक तड़प थी; और भागवत हमें यही सिखा रहा है कि कोई भी उपलब्धि, चाहे कितनी भी विराट हो, आत्मा को तब तक तृप्त नहीं कर सकती जब तक वह परमेश्वर की प्रेममयी भक्ति में विश्राम न पा ले।

देवाषै नारद का आगमन

ठीक इसी पावन विषाद की अवस्था में — जब कृष्णद्वैपायन व्यास इस भाव से खिन्न थे कि उनमें अब भी कुछ शेष है — कृपा अनायास और पूर्णतः सुसमय पर आ पहुँची। लोकों में विचरण करते हुए दिव्य ऋषि नारद सरस्वती-तट पर व्यास के आश्रम में पधारे।

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ।

पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥

tam abhijñāya sahasā pratyutthāyāgataṁ muniḥ । pūjayām āsa vidhivan nāradaṁ sura-pūjitam
॥ 33 ॥

अर्थ: उन्हें तत्काल पहचानकर ऋषि व्यास सहसा उठ खड़े हुए और विधिपूर्वक नारद की — जो देवताओं द्वारा भी पूजित हैं — पूजा की। (प्रथम स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक ३३)



दिव्य ऋषि नारद सरस्वती-तट के आश्रम में पधारते हैं, और वेदव्यास तत्काल उठकर उनकी पूजा करते हैं (श्लोक ३२-३३)।

यह क्षण अत्यन्त सुन्दर रीति से संयोजित है। जिस क्षण एक महान आत्मा अपनी अपूर्णता स्वीकार करती है और विनम्र हृदय से उस न्यूनता के लिए तड़पती है, ठीक उसी क्षण कृपा का दूत उसके द्वार पर आ खड़ा होता है। और व्यास — अपनी समस्त महत्ता के बावजूद — अपने अतिथि का स्वागत अभिमान से नहीं करते, अपितु तुरन्त उठकर पूर्ण श्रद्धा से नारद की पूजा करते हैं। इस भेंट के साथ यह अध्याय समाप्त होता है, और वह महान संवाद — जो व्यास के विषाद का उपचार प्रकट करेगा और संसार को भागवत प्रदान करेगा — अब आरम्भ होने ही वाला है।

मुख्य शिक्षाएँ

१. भक्ति के बिना महानतम कार्य भी हृदय को तृप्त नहीं कर सकते। व्यास ने वेदों का विभाजन किया और महाभारत की रचना की, फिर भी उनके हृदय को शान्ति न मिली (श्लोक २६)। विद्या, शक्ति और सत्कर्म बहुमूल्य हैं, किन्तु आत्मा केवल भगवान की प्रेममयी भक्ति में ही विश्राम पाती है।
२. शास्त्र करुणावश दिए जाते हैं। व्यास ने एक वेद को चार भागों में विभक्त किया (श्लोक १९-२४) और महाभारत की रचना की (श्लोक २५) — यश के लिए नहीं, अपितु इसलिए कि पतनशील युग में प्रत्येक वर्ग और सामर्थ्य के जन परम कल्याण पा सकें।
३. भागवत-धर्म वही सार है जो परमहंसों को प्रिय है। भगवान की प्रेममयी भक्ति — वह एक उपदेश जिसे व्यास ने अनुभव किया कि उन्होंने अब तक पूर्णरूप से नहीं कहा (श्लोक ३१) — वही है जिसे परमहंस सन्त सबसे अधिक प्रिय मानते हैं, और जिसे भगवान अपने भक्त से सबसे सहर्ष स्वीकार करते हैं।
४. ईमानदार आत्म-परीक्षण ही कृपा का आरम्भ है। व्यास ने अपनी बेचैनी के लिए संसार को दोष नहीं दिया; उन्होंने भीतर मुड़कर अपने ही हृदय को टटोला (श्लोक २७-३१)। यही विनम्र आत्म-निरीक्षण उच्चतर मार्गदर्शन का द्वार खोलता है।
५. कृपा विनम्र के पास ठीक समय पर आती है। जिस क्षण व्यास ने अपनी अपूर्णता स्वीकार की, नारद पधारे (श्लोक ३२-३३), और उस महान ऋषि ने उठकर उनकी पूजा की। जो महत्ता विनम्र बनी रहती है, वही वह भूमि है जिसमें ज्ञान जड़ पकड़ता है।

भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में प्रत्येक सच्चे साधक के लिए एक दुर्लभ सान्त्वना है। यदि स्वयं वेदव्यास — वेदों के संकलनकर्ता, भगवान के ही अंशावतार — इतना भव्य परिश्रम करके भी भीतर एक रिक्तता अनुभव कर सकते थे, तो हमारी अपनी बेचैनी हमें लज्जित करने वाली नहीं है। भागवत उस रिक्तता को असफलता के रूप में नहीं, अपितु एक द्वार के रूप में प्रस्तुत करता है। व्यास की अतृप्ति वस्तुतः आत्मा का वह स्पन्दन था जो समस्त उपलब्धियों के परे अपने सच्चे घर — प्रेममयी भक्ति — की ओर पहुँच रहा था। उनकी प्रतिक्रिया ही हमारी शिक्षा है: उन्होंने न तो स्वयं को विचलित किया, न अपनी उपलब्धियों पर अभिमान किया, अपितु पावन नदी के तट पर मौन बैठकर अपने हृदय से पूछा कि क्या छूट रहा है। और उस ईमानदार जिज्ञासा में ही सहायता मार्ग पर चल पड़ी थी। जब हम वह मौन पीड़ा अनुभव करें जिसे कोई सफलता नहीं भर सकती, तब हम सरस्वती-तट पर बैठे व्यास का स्मरण कर सकते हैं, और — जैसा उन्होंने किया — उस एक वस्तु की ओर मुड़ सकते हैं जो तृप्त करती है: भगवान का स्मरण और प्रेममयी सेवा।

दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज कुछ शान्त क्षण निकालिए, जैसे व्यास ने सरस्वती के तट पर निकाले, और स्थिरता में बैठकर अपने ही हृदय से कोमलता से पूछिए कि वह अपनी समस्त व्यस्तता के नीचे वस्तुतः किसके लिए तड़पता है। फिर उस तड़प को भगवान को अर्पित कर दीजिए — चाहे उनके किसी पावन नाम को धीरे से उच्चारकर, अथवा भागवत के एक श्लोक को ध्यान से पढ़कर। अभ्यास को विनम्र और सच्चा रहने दीजिए। हृदय का वही मुड़ना ही कृपा का आरम्भ है।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का चतुर्थ प्रवचन समाप्त होता है — कुछ नैमिषारण्य वन में और कुछ सरस्वती-तट पर स्थित, इस महान पुराण के प्रथम स्कन्ध में, जिसे आत्मज्ञानी परमहंस-संहिता कहते हैं। इस अध्याय में, श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय ४ में, महर्षि शौनक पूज्य सूत जी से पुनः प्रश्न करते हैं, और सूत जी वेदव्यास की उत्पत्ति खोलकर उत्तर देते हैं — द्वापर युग में उनका जन्म, वेदों का विभाजन, और करुणावश महाभारत की रचना। किन्तु अपने परिश्रम की पराकाष्ठा पर उस महान ऋषि ने अपने हृदय को अतृप्त पाया, और स्वयं को टटोलते हुए अनुभव किया कि भगवान का साक्षात्, प्रेममय महिमा-गान अब तक अपना उचित स्थान नहीं पा सका है। ठीक उसी क्षण दिव्य नारद पधारे, और व्यास उठकर उनकी पूजा करने लगे। इसी भेंट से सम्पूर्ण भागवत का गान जन्म लेगा। हम व्यास से यही सीखें कि अपने समस्त कर्मों के नीचे उस एक वस्तु को खोजें जो अकेली हृदय को भर सकती है।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में विशुद्ध भक्ति को जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, चतुर्थ प्रवचन, पुस्तक पृष्ठ ११-१४।

श्रीमद्भागवत विजडम · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-4-vyasa-dissatisfaction-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विजडम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट